श्रमण-जीवन में अप्रमत्तता

श्री प्रेमचन्द कोठारी

साधक श्रमण अथवा श्रमणी अपने साधनाशील जीवन को किस प्रकार अग्रेसर कर सकते हैं, इसके सम्बन्ध में प्रेरक विचारों से ओतप्रोत है यह आलेख। -सम्पादक

जैन दर्शन में महाव्रतधारी साधक को साधु, भिक्षु, संयमी, श्रमण आदि अनेक नामों से संबोधित किया गया है। ऐसे तो व्यवहार नय की अपेक्षा से द्रव्य दीक्षा लेने पर भी उन्हें श्रमण आदि नामों से संबोधित किया जाता है, लेकिन ज्ञानीजन फरमाते हैं कि मात्र द्रव्य दीक्षा अनंत बार लेने पर भी लक्ष्य की उपलब्धि नहीं हो सकती। वास्तव में दीक्षा का, संयमी होने का लक्ष्य वीतराग अवस्था की प्राप्ति, कर्म-रहित होना तथा मोक्ष-प्राप्ति है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये श्रमण को सदा सजग एवं अप्रमत्त (भारण्ड पक्षी की भाँति) रहने की आवश्यकता है। इसी आशय को समझाते हुए निशीथभाष्य 264 में बताया है:- **'जा चिट्ठा सा सव्वा संजम हेउं ति होति समणाणं**, अर्थात् श्रमणों की सभी क्रियाएँ संयम के हेतु ही होती हैं।

श्रमण की निशदिन होने वाली क्रियाएँ अर्थात् उठना, बैठना, खाना-पीना, देखना, बोलना, विहार, निहार, सोना, जागना आदि सभी में वीतराग वाणी की, वीतरागता की सुगन्ध महकनी चाहिये। यह सुगन्ध तब ही महक सकती है जबकि वह साधक निश-दिन अप्रमत्त रह कर सावधानीपूर्वक साधना करता रहे। आचारांग चूर्णि 1/3/4 में कहा गया है-'अप्पमत्तस्स नत्थि भयं, गच्छतो चिट्ठतो भुञ्जमाणस्स वा।'' अर्थात् अप्रमत्त को चलने, खड़ा होने, खाने में कहीं भी भय नहीं है। वास्तव में प्रमादी को सब ओर से सदा भय ही रहता है जबकि अप्रमादी को कभी किसी तरह का भय नहीं रहता है। भगवान् ने आचारांग सूत्र में फरमाया है-''सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं।''

जिस साधक को साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ना है, अपना आध्यात्मिक विकास करना है, उसको प्रत्येक प्रसंग, अवस्था, घटना आदि उपस्थित होने पर पूर्ण सावधानी पूर्वक अपनी मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्ति में कर्मबन्धन से पूर्ण प्रकार से बचते हुए प्रवृत्ति करनी चाहिये। यह भूलकर भी नहीं समझना चाहिये कि मेरी इच्छा अनुसार साथी, शिष्य, गुरु, शरीर परिस्थिति मिल जाए तो मैं साधना अच्छी कर सकता हूँ। उसको तो यह समझना चाहिये कि मुझे जिस तरह का साथी, शिष्य, गुरु शरीर परिस्थिति आदि मिली है, इन सबका निर्माता भूतकाल में मैं ही था, ये सब अवस्थाएँ मेरी साधना के लिये ही उपस्थित हुई हैं, इनमें ही मुझे साधना करनी है। वास्तव में कुशल साधक प्राप्त प्रत्येक व्यक्ति, परिस्थिति, अवस्था आदि को अपनी साधना

का अंग ही मानता है और उसे अपनी साधना के लिये उपयोगी ही समझता है। वह किसी भी घटना को अकारण एवं अनुपयोगी न समझकर उसी से साधना कर आगे बढ़ जाता है, जैसे भगवान् महावीर-चण्डकौशिक भगवान् महावीर- गौशालक, मैतार्य अणगार-स्वर्णकार, श्रमणोपासक महाशतक-रेवती, राजा परदेशी-सूरिकंता आदि। उक्त उदाहरणों में स्पष्ट होता है कि इन महापुरुषों को परिस्थितियाँ भले ही भिन्न-भिन्न प्राप्त हुई हों, लेकिन इनसे ही ये अपने लक्ष्य प्राप्ति में आगे बढ़ गए।

श्रमण की परिभाषाएँ आगमों, भाष्य, चूर्णि आदि अनेक स्थानों पर प्रेरक रूप में मिलती हैं, उनमें से कुछ निम्नांकित हैं:-

(1) समे य जे सव्वपाणभूतेसु से हु समणो। -प्रश्नव्याकरण 2.5
अर्थात्-जो समस्त प्राणियों के प्रति समभाव रखता है, वस्तुतः वही श्रमण है।

(2) नाणी संजमसहिओ नायव्वो भावओ समणो। -उत्तराध्ययन, निर्युक्ति 389
अर्थात्- जो ज्ञानपूर्वक संयम की साधना में रत (लीन) है, वही सच्चा श्रमण है।

(3) इह लोगणिरविक्खो, अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्हि।
जुत्ताहारविहारो, रहिदकसाओ हवे समणो॥ - प्रवचनसार 3.26
अर्थात्- जो कषायरहित है, इस लोक में निरपेक्ष (किसी तरह की अपेक्षा रहित) है, परलोक में भी अप्रतिबद्ध (अनासक्त) है और विवेकपूर्वक आहार-विहार की चर्या रखता है, वही सच्चा श्रमण है।

(4) समो सव्वत्थ मणो जस्स भवति स समणो। - उत्तराध्ययन चूर्णि 2
अर्थात्- जिसका मन सर्वत्र (अनुकूल, प्रतिकूल, उतार-चढ़ाव आदि सभी प्रसंगों में) सम रहता है, वही श्रमण है।

(5) उवसमसारं खु सामण्णं - बृहत्कल्पभाष्य, 1.35
अर्थात्- श्रमणत्व (साधु जीवन) का सार उपशम है अर्थात् श्रमण में सदा समाधि, शांति, निर्लेपता, निर्विकारता बनी रहे।

इसी तरह के आशयों से युक्त अनेक प्रेरणास्पद सूत्र आगम साहित्य में उपलब्ध हैं।

जिसने एक भव में द्रव्य के साथ ही भाव श्रमण की भी आराधना कर ली एवं पूर्ण अप्रमत्तता, सजगता बनाये रखी,यद्यपि अप्रमत्त अवस्था सकषायी साधकों की अंतर्मूहुर्त से अधिक नहीं रह सकती, लेकिन स्थिति पूरी होने के बाद प्रमत्तता आने पर पुनः सावधान होकर शीघ्र ही वह अप्रमत्त होता रहे, और यदि पहले आयु नहीं बंधा हो तो प्रमत्त संयत गुणस्थान में आयु बांधने वाला अधिक से अधिक 15 भव में अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। वह साधना काल में भले ही वीतरागी नहीं भी बने तो भी वीतरागता की अनुभूति अवश्य कर सकता है। जो संत बन भी गये, लेकिन भौतिक आकर्षणों में, तेरे मेरे में, सामाजिक गतिविधियों में, सांप्रदायिक उलझनों आदि में फंसे रहे तो उनकी स्थिति धोबी के श्वान की भाँति समझनी चाहिये। घर वाले तो समझे कि

हमारा परिजन साधु होकर साधना कर रहा है, अच्छे प्रवचन दे रहा है, बहुत पूछ हो रही है, लेकिन वह आत्मसाक्षी से अप्रमत्त होकर साधना नहीं कर रहा है तो स्वयं भी धोखे में है एवं संघ समाज को भी धोखा दे रहा है। घर की सुख-सुविधा भी छोड़ी एवं इस क्षेत्र में आकर काषायिक परिणतियों में ही फंसा रहे तो वह साधक अपने जीवन-काल के ये स्वर्णिम पल बर्बाद कर रहा है। प्रसंगवश स्वर्गीय लाला रणजीत सिंह कृत आलोयणा का निम्नलिखित दोहा बहुत ही शिक्षाप्रद है-

कहा भयो घर छाड़ (छोड़) के, तज्यो न माया संग।
ज्यूं नाग तजी कांचली, विष न तजियो अंग।।

कुशल विद्यार्थी स्कूल या कॉलेज में प्रवेश करने के साथ ही तन्मयता से अपना अध्ययन करता रहता है, कभी भी अकस्मात् बिना सूचना के परीक्षा का प्रसंग आवे तो भी प्रथम श्रेणी व प्रथम स्थान प्राप्त कर लेता है। इस कुशल विद्यार्थी की तरह साधक को भी आत्मनिरीक्षण, स्वाध्याय, ध्यान आदि सभी क्रियाएँ पूर्ण आत्मसाक्षी से करते रहना चाहिये, ऐसे साधक का कभी भी आयुबन्ध हो या मृत्यु आ जावे, तो वह अवश्य सुगति का अतिथि बनता है। जो श्रमण सोचते हैं कि अंतिम समय का ध्यान रखकर जीवन सुधार लेंगे, वे बड़ी भारी भूल कर रहे हैं, क्योंकि सदा के अभ्यास से ही अंतिम समय सुधर सकता है।

अखण्ड बालब्रह्मचारी, सामायिक स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक, इतिहास मार्तण्ड, संघ के सजग प्रहरी, संघ एकता में विश्वास करने वाले पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी महाराज सा का मुझे निकट से निमाज में सेवा करने का सुअवसर मिला, जिन्होंने शायद कभी लम्बी तपस्या नहीं की होगी। उस महापुरुष ने अंतिम समय में शारीरिक वेदना होते हुए भी समभाव से वेदना सहन की, पूर्ण निस्पृहता दिखाई, तेरह दिन के उपवास हुए एवं अंतिम समय को समाधिमरण महोत्सव के रूप में संपन्न किया। यह साधना उस विभूति की कोई दो चार माह या दो चार वर्ष की नहीं थी, उन्होंने जीवन भर साधना की तब अंतिम समय सुधार पाये एवं आदर्श प्रेरणा छोड़ गये। इसी प्रकार प्रत्येक श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविकाओं को भी अपना लक्ष्य प्राप्ति का अभ्यास सदा करते रहना चाहिये।

अनुयोगद्वार सूत्र में आगमकारों ने स्पष्ट बताया है कि श्रमण को सभी प्रकार के सावद्य व्यापारों (18 पाप आदि) से निवृत्त होकर मूल गुण रूपी संयम, उत्तर गुण रूपी नियम एवं अनशन आदि बारह प्रकार के तप में सदा लीन रहना चाहिये। ऐसा साधक सच्ची सामायिक की, श्रमणत्व की साधना कर रहा है। अतः श्रमण को संयम-विरोधी सभी प्रवृत्तियों को आत्मसाक्षी से सदा के लिए तिलांजलि दे देना चाहिये।

श्रमण-जीवन में साधना के क्षेत्र में अपना विकास हो रहा है या नहीं हो रहा, इसका स्वनिरीक्षण करते रहना चाहिये। स्वनिरीक्षण हेतु कुछ मापदण्ड के बिन्दु नीचे दिये जा रहे हैं:-

1. मेरे मन में विजातीय द्रव्यों का आकर्षण प्रभाव कम होता जा रहा है या नहीं ? नहीं हो रहा हो तो विजातीय द्रव्यों की क्षणभंगुरता का चिन्तन कर उनसे हटने का प्रयास करना चाहिये।

2. प्रत्येक अनुकूल प्रतिकूल प्रसंग में समभाव, आत्मशांति, समाधि आदि बढ़ रही है या नहीं ?
3. किसी भी प्रसंग में तनाव तो नहीं हो रहा है? हो रहा हो तो स्वाध्याय, ध्यान, अनुप्रेक्षा द्वारा तनाव रहित होने का प्रयास करना चाहिये।
4. दिन प्रतिदिन आत्मीय सुख बढ़ता जा रहा है या नहीं? क्योंकि भगवती सूत्र में तो बारह मास की दीक्षा वाले के सुख को सर्वार्थसिद्ध के देवों के सुख से भी बढ़कर बताया है।
5. पर के दोषों को देखकर उनसे घृणा, बुराई आदि प्रवृत्ति तो नहीं हो रही है? अगर हो रही हो तो उसके दोषों से भी शिक्षा लेना चाहिये कि यह मेरा शिक्षक है, उसको उपकारी मानें और अपने में वे दोष नहीं प्रवेश करें, इसका ध्यान रखें। उसके दोषों को माफ कर दें।
6. अपना छोटा सा दोष पर्वत जैसा लग रहा है या नहीं, उसकी पुनरावृत्ति से बच रहा हूँ या नहीं ?
7. अपनी बड़ी से बड़ी विशेषता सामान्य तिनके जैसी लग रही है या नहीं? दूसरे की छोटी सी विशेषता भी बड़ी लग रही है या नहीं , तथा उस गुण को अपने जीवन में उतारना चाहिये।
8. प्रातः व सायंकालीन प्रतिक्रमण खाली शब्दों से न करके उसमें एकमेक हो रहा हूँ या नहीं?

उपर्युक्त ऐसे अनेक मापदण्डों द्वारा अपना निरीक्षण कर अपना आध्यात्मिक विकास किया जा सकता है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि दूसरों की दृष्टि में अच्छा साधक दिखाई देना आसान है, लेकिन अपनी एवं वीतराग भगवान् की दृष्टि में निर्दोष नहीं बन पावे तो एक भव में ही नहीं, अनेक भवों में भी अपना कल्याण संभव नहीं है। हाँ, दूसरों का अपने द्वारा कल्याण हो सकता है।

समता रूप सामायिक को धारण करने वाले श्रमण को अनुयोगद्वार सूत्र में बारह पदार्थों से उपमित किया है। ये बारह उपमाएँ बहुत संक्षेप में नीचे दी जा रही हैं। ये उपमाएँ वास्तव में श्रमण के जीवन का दर्पण हैं:-

उरग गिरि जलण सागर, णहतल तरूगण समो य जो होई।
भमर मिय धरणि जलरूह, रवि पवण समो य सो समणो।।

अर्थात्- सर्प, पहाड़, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्ष, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य और पवन के समान जो होता है, वही श्रमण है।

1. जैसे सर्प अपने लिये बिल नहीं बनाता, चूहों आदि के द्वारा बनाये हुये बिल में रहता है। ऐसे ही श्रमण को अपने निवास आदि नहीं बनाना चाहिये। न प्रेरणा करनी चाहिये, अनुमोदन भी नहीं करना चाहिये।
2. जैसे पर्वत हवा आदि से कंपित नहीं होता, ऐसे ही श्रमण को भी सभी प्रकार के प्राप्त परीषहों में समभाव रखना चाहिये।
3. जैसे अग्नि में कितना भी ईंधन डाला जावे, वह तृप्त नहीं होती, इसी तरह श्रमण को ज्ञानार्जन में, तप करने में तृप्त नहीं होकर ज्ञानार्जन करना चाहिये एवं तपाराधना करनी चाहिये।
4. जैसे समुद्र अगाध जल से भरा रहता है, अपनी मर्यादा नहीं तोड़ता। इसी प्रकार श्रमण को भी भगवान् द्वारा

प्ररूपित मर्यादा नहीं तोड़नी चाहिये। क्षमा आदि दस धर्मों द्वारा जीवन को गंभीर व मर्यादित बनाये रखना चाहिये।

5. जिस प्रकार आकाश निराधार स्थित है, इसी प्रकार श्रमण को भी किसी गृहस्थ, संघ आदि पर आधारित नहीं रहकर जीवन यापन करना चाहिये।
6. जैसे वृक्ष गर्मी, ठंड, हवा आदि को सहन करता है, अपनी छाया से दूसरों को सुख पहुँचाता है, ऐसे ही श्रमण को अनुकूल प्रतिकूल परीषहों को सहन करना चाहिये और धर्मोपदेश द्वारा दूसरों को शांति पहुँचाना चाहिये।
7. जैसे भ्रमर फूलों से थोड़ा-थोड़ा रस लेता है, लेकिन फूल को मुरझाने नहीं देता। ठीक इसी प्रकार श्रमण भी गृहस्थ के घरों से थोड़ा-थोड़ा आहार लेता है, लेकिन किसी गृहस्थ को किलामणा नहीं उपजाता है, न दूसरी बार गृहस्थ को भोजन बनाना पड़े, ऐसी परिस्थिति पैदा होने देता है।
8. जैसे सिंह को देखकर हरिण तुरन्त भाग जाता है, ठीक इसी प्रकार श्रमण को पाप स्थानों से सदा डरते एवं बचते रहना चाहिये।
9. जिस प्रकार पृथ्वी ठंड, गर्मी, छेदन, भेदन आदि सभी कष्टों को समभाव से सहन कर अपने अपकारी, उपकारी, भले-बुरे आदि सभी को समान रूप से आश्रय देती है। ठीक इसी प्रकार श्रमण अपने अपकारी, उपकारी, अपने निन्दक या प्रशंसक आदि सबका आधारभूत बन कर सबको समान रूप से शांति, क्षमा, राग-द्वेष रहित होने आदि का निःस्वार्थ भाव से उपदेश देता है।
10. जिस प्रकार कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है एवं जल से विकसित होता है लेकिन फिर भी जल से निर्लिप्त रहता है। ठीक इसी प्रकार श्रमण को भी कामभोगों से पूर्ण निर्लिप्त रहना चाहिये। श्रमण की भी उत्पत्ति काम-भोगों से ही होती है, लेकिन दीक्षा के बाद अपना नया जन्म समझ कर काम-भोगों, पाप प्रवृत्तियों से पूर्णतः बचना चाहिये।
11. जैसे सूर्य अंधकार का नाशकर संसार के पदार्थों को प्रकाशित करता है। ठीक इसी प्रकार श्रमण को आगमिक ज्ञान रूपी प्रकाश से सम्पन्न होकर सूर्य की भाँति सांसारिक प्राणियों के अज्ञान रूपी अंधकार का नाशकर उनको वीतराग मार्ग पर बढ़ने के लिये प्रेरित करना चाहिये।
12. जैसे वायु चारों दिशाओं में अप्रतिबद्ध रूप से बहती है। ठीक इसी प्रकार श्रमण को भी किसी गृहस्थ आदि के प्रतिबन्ध में न रहकर अप्रतिबद्ध विहारी होकर धर्मोपदेश द्वारा प्राणियों का कल्याण करना चाहिये। जैसे पवन स्थिर नहीं रहता, ऐसे ही श्रमण को भी अकारण मर्यादा से अधिक एक स्थान पर नहीं ठहरना चाहिये।

विषयान्तर होकर मेरा श्रमणोपासकों एवं श्रमणोपासिकाओं से सानुरोध, सविनय निवेदन है कि हमको भी अपनी पूर्ण शक्ति द्वारा आदर्श, परोपकारी, ज्ञान आचरण आदि से सम्पन्न होकर आगमकालीन

श्रावकों की तरह का जीवन यापन करना चाहिये। श्रावक भी श्रमण का उपासक है,अतः उसके जीवन में श्रमणत्व के गुण झलकने चाहिये। बारहव्रत, चौदह नियम एवं तीन मनोरथ की आराधना तो करनी ही चाहिये, लेकिन इसके अलावा भी गृहस्थ में रहते हुए अपनी शक्ति के अनुसार श्रमण के क्षमा आदि दस गुण, पांच समिति, तीन गुप्ति, दस समाचारी आदि की भी आंशिक रूप से आराधना करते रहना चाहिये। यह हमको ध्यान रखना चाहिये कि हमारा कल्याण भी श्रेष्ठ आराधना करने से ही है तथा अन्यों पर भी हमारे आचरण का गहरा प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि प्रभाव जीभ का नहीं जीवन का पड़ता है।

मैं इस लेख को लिखते हुए संकोच का अनुभव कर रहा हूँ, छोटे मुँह बड़ी बात वाली कहावत चरितार्थ करने जैसा अनुभव कर रहा हूँ, क्योंकि मैं सामान्य श्रावक होते हुए श्रमणों को प्रेरणा की बात कर रहा हूँ।

अंत में निवेदन है कि उपर्युक्त लेख के द्वारा किसी की अविनय, अशातना हुई हो, कोई आगम के प्रतिकूल प्ररूपणा हो गई हो तो करबद्ध सभी पाठकवृन्द से क्षमा चाहता हूँ तथा आशा करता हूँ कि श्रमण-श्रमणियाँ आदर्श एवं पारदर्शी साधना में आगे अग्रसर होंगे।

-गौतम रोड़ लाइन्स, बूँदी (राज.)

✻